SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

सत्ता के तीन आयाम – सार्त्र की दृष्टि में

श्याम रंजन पाण्डेय, स्नातकोत्तर दर्शनशात्र विभाग,
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखंड, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author :
श्याम रंजन पाण्डेय,
स्नातकोत्तर दर्शनशात्र विभाग,
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग,
झारखंड, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 26/06/2020
Revised on : -----
Accepted on : 29/06/2020
Plagiarism : 01% on 26/06/2020

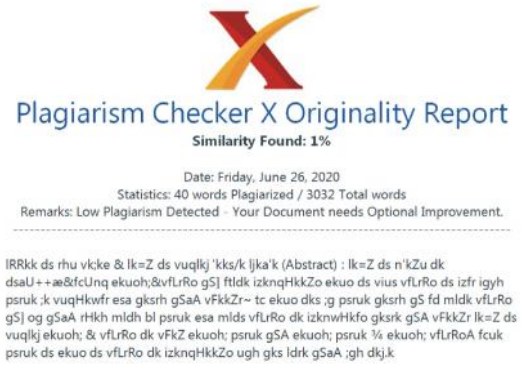
Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 1%

Date: Friday, June 26, 2020
Statistics: 40 words Plagiarized / 3032 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

IRRkk ds rhu vk;ke & lk=Z ds vuqlkj 'kks/k ljka'k (Abstract) : lk=Z ds n'kZu dk dsaU++æ&fcUnq ekuoh;&vfLrRo gS] ftldk izknqHkkZo ekuo ds vius vfLrRo ds izfr igyh psruk ;k vuqHkwfr esa gksrh gSaA vFkkZr~ tc ekuo dks ;g psruk gksrh gS fd mldk vfLrRo gS] og gSaA rHkh mldh bl psruk esa mlds vfLrRo dk izknwHkfo gksrk gSA vFkkZr lk=Z ds vuqlkj ekuoh; & vfLrRo dk vFkZ ekuoh; psruk gSA ekuoh; psruk ¼ ekuoh; vfLrRoA fcuk psruk ds ekuo ds vfLrRo dk izknqHkkZo ugh gks ldrk gSaA ;gh dkj.k

शोध सारांश :–

सार्त्र के दर्शन का केन्द्र–बिन्दु मानवीय – अस्तित्व है, जिसका प्रादुर्भाव मानव के अपने अस्तित्व के प्रति पहली चेतना या अनुभूति में होती हैं। अर्थात् जब मानव को यह चेतना होती है कि उसका अस्तित्व है, वह हैं। तभी उसकी इस चेतना में उसके अस्तित्व का प्रादुर्भाव होता है। अर्थात सार्त्र के अनुसार मानवीय – अस्तित्व का अर्थ मानवीय चेतना है। **मानवीय चेतना = मानवीय अस्तित्व**। बिना चेतना के मानव के अस्तित्व का प्रादुर्भाव नही हो सकता हैं। यही कारण है कि मानव को सार्त्र ने चेतना के नाम से इंगित किया हैं।

मुख्य शब्द :–

सत्ता, मानवीय – अस्तित्व, चेतना, अस्तित्ववान व्यक्ति, सृजनात्मकता।

ज्यां–पाल सार्त्र ने सत्ता के आयामों का उल्लेख किया है :–

अचेतन सत्ता
(Being – itself, insoi)

चेतन सत्ता (Being for– itself, pour insoi)

अन्य सत्ता (Being–for others)

''यह चेतना कोई सार्वभौम चेतना नही है, बल्कि हर व्यक्ति की अपनी चेतना होती है। अतः मानव – अस्तित्व के विकास का अर्थ है अस्तित्ववान व्यक्ति की प्राथमिक चेतना के अनुरूप उसकी आंतरिकता का विकास। सार्त्र के विचार का मूल केंन्द्र चेतन – अस्तित्ववान व्यक्ति हैं। किंतु यह

व्यक्ति अपनी प्राथमिक चेतना में ही अपने को एकाएक एक स्थिति (situation) में पाता हैं। उस चेतना में उसे यह अनुभूति होती है कि अब सब कुछ उसी पर निर्भर है, उसकी स्थिति के दो अनिवार्य अंग है – एक तो उसके अंतर्गत कुछ 'वस्तु' है तथा उसके अंतर्गत अन्य व्यक्ति भी है। इस प्रकार सार्त्र चेतना के अस्तित्ववादी विश्लेषण में सत्ता के तीन आयामों का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मानव की अस्तित्ववादी चेतना के विश्लेषण में ही सत्ता के तीन आयाम स्पष्ट होते है। इन्हे सार्त्र अचेतन सत् (Being – itself, insoi), चेतना सत् (Being – for – itself, Pour soi) तथा अन्य सत् (Being for other) कहते है। सार्त्र के दर्शन में मानव चेतना सत्ता (For itself) की ही प्रधानता है, किंतु इसकी विशिष्टाओं को स्पष्ट करने के लिए उन्हें इस चेतन सत् का अन्तर अचेतन सत् (in - itself) से स्पष्ट करना पडता है। तथा यह भी स्पष्ट करना पडता है कि अपने चारों और फैले अचेतन सत् की चेतना में किस प्रकार चेतना सत् अर्थात अस्तित्ववान व्यक्ति के अस्तित्व का विकास होता है। उसी संदर्भ में मानव अस्तित्व के विकास के संदर्भ में अन्य सत्ता (Being for other) भी प्रासंगिक हो जाती है।''[1]

अतः हम सार्त्र द्वारा बतलाएँ गए सत्ता के इन तीनों आयामों की अलग–अलग एवं स्पष्ट व्याख्या करने का प्रयास करेंगे तथा साथ ही साथ हम इन सत्ताओं अर्थात अचेतन सत् (insoi) तथा अन्य सत् (Being for other) के साथ मानव चेतन सत्ता (Being for itself) के संबंध को भी दर्शाने का प्रयास करेंगे –

(I) अचेतन सत् (Insoi) :–

''अचेतन सत् के अंतर्गत सार्त्र ने संसार के उन सभी भौतिक वस्तुओं एवं पदार्थो को रखा हैं, जिनसे मनुष्य सदैव घिरा रहता है। सार्त्र के अनुसार अचेतन सत् जैसा हैं, वैसा ही है। वह बस 'है' वह मात्र वही है जो वह है। इससे हम 'टकरा' सकते हैं, किंतु इसमें कोई स्व – प्रक्रिया नहीं है। इसमे न किसी प्रकार की सृजनात्मकता निहित है न कोई विकास क्रम। सार्त्र ने इसकी व्याख्या में इसमें अचेतन लक्षणों को विभिन्न विषेशणों के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है। जैसे – अचेतन तत्व अभेद है, गहण है, अपरागम्य है। वे केवल होते है, उनसे कोई अर्थ सर्जित नहीं होता। लोग इसके पिछे जाकर इसके सारतत्व (essence) को पकड़ने की चेष्टा करते है, किंतु इससे 'इसका' कोई अर्थ नही उभरता, बल्कि मानवीय अर्थ उभरते हैं। मानव के अतिरिक्त अन्य जीव भी कुछ इसी प्रकार के हैं, उनमें कोई अपनी कोई स्वतः प्रेरणा अपनी कोई अभिक्रमशीलता नहीं होती है। वे कुछ इस प्रकार में संचारित है कि उन्हे किसी विशेष उद्दीपन में विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया करनी ही है। इस दृष्टि से अचेतन जगत् बेतुका तथा अर्थहीन है। सार्त्र इसे अर्थहीन (absurd) या अरूचिकर (detrop) कहते है। उनका कहना है कि इसमें अर्थवत्ता केवल मानव के लिए ही संभव है, केवल चेतन मनुश्य अपने अनुसार इसे सार्थक बनाता है।''[2]

सार्त्र ने इस अचेतन सत् के कुछ प्रमुख लक्षणों को भी उद्घटित किया है :–

(क) अचेतन सत् चेतन – मनुष्य की आत्म – चेतना का एक आवश्यक उपकरण है। इससे टकरा कर ही चेतना चेतन मनुष्य इससे अपनी भिन्नता को समझ पाता है।

(ख) अचेतन सत् मानवीय–अस्तित्व के लिए संभावनाओं (Potentiolity) का भण्डार है। जब चेतन–अस्तित्व (For - Itself) इससे अपनी भिन्नता को समझ लेता है, तो वह अचेतन तत्वों में असंख्य संभावनाओं को देख पाता है, जिसका उपयोग वह अपनी आवश्यकतानुसार किया करता हैं।

(ग) सार्त्र ने अचेतन तत्वों के तीसरे लक्षण को बतलाते हुए कहा है कि ये निषेधित (Nihilation) होते है। इन तत्वों का स्वरूप ही यही है कि उनका स्वरूप चेतन – सत् के हर योजना के अनुरूप निशेधित होता रहता है। चेतन–सत् अचेतन तत्वों में अपनी योजनाओं के अनुरूप नये – नये अर्थ नये – नये प्रयोजन भरता जाता है। अब चेतन – सत् के लिए वह तत्व मात्र उसी

रूप में अर्थवान है जो अर्थ चेतन – सत् ने स्वयं उसमें रखा है। अचेतन – तत्व अब मात्र वह अर्थ वह प्रयोजन है, उसका अपना अचेतन स्वरूप यहाँ निषेधित हो जाता है, और यह उस नये अर्थ में चेतन तत्व की योजना का अम्बार बन जाता है। अतः चेतन मनुष्य (For – itself, Poursoi) ही सार्त्र के विचारों का केन्द्र है।

(II) चेतन – सत्ता (Poursoi) :–

''चेतन–सत्ता अर्थात् मानवीय अस्तित्व हीं सार्त्र के दर्शन का केन्द्र – बिन्दु है। किंतु सार्त्र इसे अचेतन – सत् की अपेक्षा विचित्र समझते हैं। क्योंकि जहाँ अचेतन तत्वों का ढंग पूर्णतया उनकी संरचना में ही निहित है। चेतन अस्तित्व को किसी निश्चित ढाँचे में ढाला नही जा सकता है। सार्त्र कहते है कि चेतन – मनुष्य वस्तुतः एक विचित्र विरोधाभास हैं, क्योंकि कहा जा सकता है कि वह जो है वही नही हैं, तथा जो वह नहीं है, वह है। अर्थात् किसी क्षण में हम मानव के निश्चित लक्षणों का विवरण करते हुए यह नही कह सकते है कि मानव बस यही हैं। प्रतीकात्मक भाषा में कहा जा सकता है कि चेतन – मनुष्य एक ऐसा 'खोल' है, जिसे वह सदा अपने से ही भरता रहता है। इसके अस्तित्वान होने का अर्थ ही है कि इसे सदा अपने अस्तित्व की चेतना है, तथा वह आत्म – अस्तित्व की चेतना, के साथ सदा नये – नये ढंगों में उभरती रहती है।

सार्त्र ने चेतना के रूप में ही मानव को परिभाषित किया है। तथा इस चेतना को एक कमी की चेतना माना है, जिसे मनुष्य सदैव दूर करता रहता हैं, इसी प्रकार वह सदा सर्जित होने की, विकसित होते रहने की प्रक्रिया में रहता है। सार्त्र के अनुसार इस प्रकार की कमी की अनुभूति वस्तुतः उस मानवीय शक्ति का सूचक है, जिसके द्वारा मनुष्य चेतन निर्णय लेता है, स्वीकार एवं निषेध करता है।''[3] सार्त्र चेतना सत्ता के विषय में बतलाते है कि ''चेतना की विशिष्टता यह है कि वह सत्ता का असंकुचन है। सच यह है कि उसकी परिभाषा स्वंय से संगती के रूप में कर सकना असंभव है। इस मेंज के बारे में मैं केवल यह कह सकता हूँ कि यह शुद्धता और मात्र एक मेंज है। पर मैं यह कहकर नही रूक सकता कि मेरा विश्वास है..... मेरा विश्वास है कि मैंने मननपूर्व कागितो को मनन की पहली शर्त के रूप में दिखा दिया है। यह कागितो निश्चय है कि वस्तु का स्थापन नही करता; यह चेतना के अंदर होता है। लेकिन फिर भी यह मननकारी कागितो के समक्ष होता है क्योंकि वह स्वयं द्वारा प्रत्यक्ष की जाने वाली अमननकारी चेतना की पहली आवश्यकता प्रतीत होता है। लेकिन मेरा विश्वास, विश्वास के रूप में ग्रहण किया जाता है। मात्र इसी तथ्य के कारण यह मात्र विश्वास नहीं रह जाता। तात्पर्य यह कि यह अभी भी विश्वास न होकर उद्वेलित विश्वास है। इस प्रकार विश्वास, विश्वास (की) चेतना हैं – इस सत्तामीमांसी निर्णय को किसी दशा में भी समरूलता का वकतत्य नहीं माना जा सकता कर्त्ता और उसका अभिलक्षण मूलतः भिन्न होते है, हालॉकि एक ही सत्ता की अटूट एकता की सीमा के अंदर रहकर हीं भिन्न होते हैं।''[4]

(III) अन्य सत् (Being for others) :–

''सार्त्र अहंमात्तवादी नहीं थे। दर्शन में अन्य मन (Other minal) के अस्तित्व की समस्या एक कठिन समस्या रही है। किंतु सार्त्र ने मानव – परिस्थितियों का विश्लेषण इस प्रकार किया है, कि अन्य मन (Other minal) की समस्या कोई समस्या ही नही रह जाती है और अहंमात्रवाद बिल्कुल बेतुका सिद्ध हो जाता है। जैसे मैं कभी – कभी अपने में लज्जा का अनुभव करता हूँ। किंतु यदि मैं एकाकी रहता तो मेरे द्वारा लज्जा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब मैं कोई निन्दनीय काम करते हुए किसी दूसरे से देख लिया जाता हूँ, तब मैं लज्जा का अवश्य अनुभव करता हूँ। दूसरो से देखे जाने पर मैं स्वयं विषय अर्थात् वस्तु (Object) बन जाता हूँ। इस प्रकार मेरे दो रूप है – एक रूप में मैं स्वयं चेतना हूँ, पर दूसरे रूप में मैं अन्य चेतना का विषय हूँ। जब मैं उपयुक्त लज्जापरक संदर्भ में चेतना का विषय बन जाता है, तब इस संदर्भ की विषयी–चेतना मेरी चेतना मेरी चेतना नही हो सकती। वह तो किसी अन्य व्यक्ति की चेतना है। इस प्रकार सत् (Being) के तीन प्रकार होते है। एक प्रकार वह है, जिसमें सत् अपने लिए (Being

for itself) है। इस रूप में सत् आत्ममुखी चेतना है। दूसरा प्रकार वह है जिसमें सत् अपने आप में (Being in itself) है। इस रूप में सत् जड़वत हैं। इसमें चेतना नहीं है, वरन् चेतना से इसका अलगाव रहता है। यह चेतना का विषय मात्र है। सत् का तीसरा प्रकार वह है जिसमें चेतना स्वयं विषय बन जाती है। इस रूप में सत् दूसरों के लिए (Being for other) है, अर्थात् इस रूप में चेतना अन्य चेतनाओं के अस्तित्व के कारण ही संभव हो सकता हैं।''[5]

''जब कोई व्यक्ति लज्जा का अनुभव करता है, तब वह मात्र आत्ममुखी चेतना का रूप धारण करके नहीं रह सकता। लज्जा की अवस्था में उसे अन्य किसी दृष्टा का विषय बनना पड़ता है, जो उसका मूल्यांकन कर सकता है। दूसरों के द्वारा मूल्यांकन के अभाव में लज्जा या ग्लानि संभव नहीं हैं। किसी व्यक्ति के द्वारा मेरे देखे जाने तथा मूल्यांकित होने का तात्पर्य यह होता हैं कि मैं विषय हूँ, तथा दूसरा सचेतन व्यक्ति है जिसे मूल्यांकन करने की क्षमता है। अर्थात दूसरा व्यक्ति स्वतंत्र चेतना है। इस प्रकार मैं ही एकमात्र स्वतंत्र चेतना नहीं हूँ, बल्कि अनेक स्वतंत्र चेतनाएँ विद्यमान हैं।''[6]

अतः सार्त्र के दर्शन में अहंमात्तवाद का आरोप लगाना सही नही है। उनके द्वारा किये गए मानवीय अस्तित्व के विश्लेषण मैं ही अन्य सत्ता (Being for other) आदि का भी रूप स्पष्ट हो जाता हैं।

चेतन–सत् (Being for itself) और अन्य सत्त् चेतन (Being for other) के बीच का संबंध :–

सार्त्र ने चेतन–सत् और अन्य सत्–चेतन के बीच के संबंधों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है। सार्त्र के अनुसार इनके बीच का संबंध ''शत्रुता एवं कलह का होता है। जब मैं किसी दूसरे चेतन–सत्ता के द्वारा देखा जाता हूँ तथा लज्जा आदि की अनुभूति करता हूँ तब वह मेरी स्वतंत्रता में बाधा है। और जब यही बात दूसरे चेतन – सत्ताओं के साथ होती है, तब वह उनकी स्वतंत्रता में बाधक है। दूसरे की स्वतंत्रता में बाधक है तथा मेरी स्वतंत्रता दूसरे की स्वतंत्रता में बाधक है। दूसरो की स्वतंत्रता से मेरी स्वतंत्रता नष्ट होती है और मेरी स्वतंत्रता से दूसरे की स्वतंत्रता नष्ट होती हैं। अतः स्वतंत्र चेतनाओं का परस्पर संबंध विरोध एवं कलह का ही हो सकता हैं। सार्त्र ने प्रेम – व्यापार को भी एक कलह की संज्ञा दी हैं। प्रेमी अपनी प्रेमिका को अपने पूर्ण अधिकार में ले लेना चाहता है। किंतु वह प्रेमिका को मात्र एक जड़ वस्तु (Bing in itself) के रूप में अधिकृत नही करना चाहता। वह उसे एक सचेतन व्यक्ति के रूप में ही अधिकृत करना चाहता है। किंतु सचेतन व्यक्ति स्वतंत्र व्यक्ति है। इस प्रेमी प्रेमिका को एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में ग्रहण करना चाहता है। पर यह संभव नही हैं, क्योंकि यह एक आत्म–विरोधी व्यापार हैं। स्वतंत्रता पर किसी का अधिकार नहीं हो सकता। अतः प्रेम एक ऐसा आत्मविरोधी व्यापार है जो सफल नही हो सकता। फलस्वरूप व्यक्ति या तो स्वपीड़क हो जाता है या परपीड़क या तटस्थ किंतु ऐसा कुछ होकर वह संतुष्ट तो नही ही हो सकता हैं।''[7]

सार्त्र की यह बात कि जब मेरी स्वतंत्रता का हरण किसी अन्य स्वतंत्र – चेतन मनुष्य के द्वारा किया जाता है, या मेरे द्वारा किसी दूसरे चेतन मनुष्य की स्वतंत्रता का हरण किया जाता है, तब हमारे बीच का संबंध शत्रुता एवं कलह का होता है, लेकिन सभी संबंधों अर्थात् प्रेम आदि को भी शत्रुता एवं कलह से पूर्ण मानना हमारे जीवन के लिए सही नहीं हैं। यदि हम अन्य की स्वतंत्रता का ख्याल रखते हुए अपने संबंधों का निर्वहन करें, तो हमारे बीच का संबंध शत्रुता एवं कलह का न रहकर मित्रता एवं स्नेहिल का हो जायेगा। यह पूर्ण रूप से संभव है। बशर्ते हमें अपनी स्वतंत्रता के साथ–साथ अन्य के साथ – साथ अन्य कें स्वतंत्रता का सम्मान करना पड़ेगा।

सार्त्र ने चेतन मनुष्य और सांसारिक वस्तुओं के बीच का संबंध किस प्रकार का होता है? इस पर भी प्रकाश डाला हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सार्त्र संसार के साथ मनुष्य के केवल ज्ञानात्मक संबंध को ही महत्व नही देते है, बल्कि उनके बीच में भावात्मक एवं क्रियात्मक संबंध को भी उतना ही महत्व प्रदान करते है। वस्तुतः सार्त्र इन संबंधों के बीच बहुत सूक्ष्म विभेद नही करते। मनुष्य की जो भावनाएँ होती हैं वे वस्तुओं के संदर्भ में ही होती है। इस प्रकार भावनाओं के द्वारा वस्तुओं का ज्ञान भी होता है।

सार्त्र के अनुसार संसार के संदर्भ में ''मनुष्य में तीन प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती है:—[8]

(क) वेदना (anguish)

(ख) व्यर्थता (Absurdity/Futility)

(ग) अरुचि (Nausea)

(क) वेदना (Anguish) :—

सार्त्र ने मनुष्य को पूर्णरूप से स्वतंत्र माना है। किन्तु मनुष्य की यह पूर्णरूपेन स्वंतत्रता ही मनुष्य को वेदना से ग्रसित करती है। मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए न तो ईश्वर है, न कोई मूल्य है, और न ही कोई नैतिक नियम है। किसी भी प्रकार के निर्धारित मार्ग का अनुसरण करना प्रवंचनात्मक विश्वास के कारण होता है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी स्वंतत्रता एवं दायित्व का निराकरण ही करता है। पर ऐसा मनुष्य सही अर्थ में अस्तित्ववान नहीं हैं। सही अर्थ में वही मनुष्य अस्तित्ववान है, जो प्रवचनात्मक विश्वास में पडता ही नही है और अपने को पूर्णतः स्वतंत्र मानता है। पर पूर्ण स्वतंत्रता के कारण मनुष्य में पूर्ण दायित्व की भावना उत्पन्न होती है, और फलस्वरूप मनुष्य वेदना एवं संताप से अक्रात हो जाता है। अतः इससे यह स्पष्ट है कि मनुष्य का आंतरिक स्वरूप ही ऐसा है कि उसे वेदना या संताप से घिर जाना ही पडता है। और उससे निकल भागना आत्मप्रवंचना में पड़ जाना है। और अपने यथार्थ अस्तित्व को खो देना हैं।

(ख) व्यर्थता (Absurdity/Futility) :—

सार्त्र ने चेतन मनुष्य और संसार के संबंध के विषय में आगे बतलाते हुए कहा हैं कि संसार के संदर्भ में मनुष्य के मन में एक दूसरी भावना के रूप में व्यर्थता रहती है। मनुष्य पूर्णतः स्वतंत्र है। वह किसी भी योजना का अंग नही है। यदि वह किसी भी योजना का अंग होता तो वह उस योजना के अन्य अंगो से संबद्ध भी होता। लेकिन तब वह स्वतंत्र नही हो सकता था, पर स्वतंत्र होने के लिए असंबद्ध होने का तात्पर्य यह है कि वह बिल्कुल प्रयोजनहीन एवं व्यर्थ है। उसकी किसी भी वस्तु के साथ किसी भी प्रकार की संगती नही हैं। इस प्रकार सांसारिक संदर्भ में मनुष्य का व्यर्थता या विसंगति की भावना से ओतप्रीत होना बिल्कुल स्वाभाविक है।

(ग) अरुचि (Nausea) :—

सार्त्र ने मनुष्य के संसार के साथ एक तीसरें भावनात्मक संबंध के रूप में अरूचि का उल्लेख किया है। मनुष्य सदैव हीं संसार की वस्तुओं पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता है। किन्तु वह ऐसा नही कर पाता। प्रायः वस्तुस्थिति ऐसी हो जाती है कि वही मनुष्य पर अधिकार स्थापित कर लेती है। फलस्वरूप मनुष्य को वस्तुओं अर्थात् संसार के प्रति अरूचि पैदा हो जाती है। इस संदर्भ में सार्त्र मधु जैसे स्नोतिल पदार्थ को सांसारिक वस्तुओं का प्रतीक मानते है। किसी भी स्नेहिल पदार्थ से जब हम हमारा संपर्क होता है, तब वही एक प्रकार में हमारे उपर अधिकार जमा लेता है। वह हमसे जल्दी अलग नहीं होता है। वह पदार्थ न तो पूरी तरह है, न ठोस ही। फलस्वरूप वह हम पर चिपक जाता है। उसके साथ हम अपनी इच्छानुसार आचरण नही कर सकते। फलस्वरूप हम में संसार के प्रति अरूचि उत्पन्न हो जाती है, ऐसी अरूचि मनुष्य को शरीर धारण करने के कारण होती है। शरीर धारण करने के कारण मनुष्य की मूलभूल चेतना अरूचि की भावना से ओतप्रोत होती रहती है। मनुश्य भले हीं विशेष – विशेष परिस्थितियों में कुछ सुख का अनुभव कर लेता हो और ऐसी अनुभूतियों में अरूचि वर्त्तमान न रहती हो पर साधारणतः उसकी अनुभूति अरूचि से संपृक्त रहती ही है।

निष्कर्ष :—

सार्त्र के अनुसार संसार एक स्नेहिल पदार्थ है जिसके साथ मनुश्य का अरूचिपूर्ण संबंध है। स्निग्धता प्रति – मूल्य (Anti - Virtue) का प्रतीक है, और चूँकि सारा संसार ही प्रकारान्तर से स्नेहिल

है, इसलिए सारा संसार ही प्रति – मूल्यवान है। सतही तौर पर भले ही संसार विभिन्न प्रकार की आकर्षक प्रतीत होने वाली वस्तुओं से निर्मित हुआ जान पड़ता हो, पर वास्तविकता यह है कि संसार की सत्ता अरूचिपूर्ण है तथा प्रति – मूल्यवान है।

किंतु यदि हम सार्त्र द्वारा किए गए चेतन – मनुष्य और संसार के बीच के संबंधों की व्याख्या की समीक्षा करते है तो हमें यह पता चलता है कि सार्त्र ने जिन शब्दों का अर्थात् वेदना, व्यर्थता एवं अरूचि आदि का प्रयोग मनुष्य एवं संसार के बीच के संबंध को दर्शाने के लिए किया है वे नकारात्मक होते हुए भी हमारे लिए बहुत हीं प्रासंगिक है। और वह इस अर्थ में कि हमारी ये भावनाएँ अर्थात् वेदना, व्यर्थता एवं अरूचि हमारे मानवीय – अस्तित्व के अनिवार्य अंग है, हम जब तक जीवित रहेंगे, इनसे हम भाग नहीं सकते हैं, किंतु यदि हम अपने अस्तित्व की इन वास्तविकताओं को स्वीकार करते हुए अपने जीवन पथ पर आगे बढ़ते रहेंगे तो हमारे अस्तित्व का विकास अनिवार्य रूप से संभव है।

अतः यह कहना कि सार्त्र के दर्शन में वेदना, व्यर्थता, अरूचि आदि नकारात्मक शब्दों का प्रयोग उनके दर्शन को नकारात्मक बनाता हैं – सर्वथा गलत होगा। इन शब्दों का प्रयोग सार्त्र ने मानवीय – अस्तित्व की वास्तविकता को दर्षाते हुए उसमें विकास लाने के लिए किया है।

संदर्भ सूची :–

1. *लाल, बसंत कुमार, समकालीन पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन, संस्करण चतुर्थ, दिल्ली 2004, पृष्ठ संख्या 498।*
2. *वही पुस्तक, पृष्ठ – 499।*
3. *वही पुस्तक, पृष्ठ – 499 – 500।*
4. *सार्त्र जे0 पी0, बीइंग एण्ड नथिंग्नेश, पृष्ठ संख्या – 121।*
5. *मिश्र, नित्यानन्द, समकालीन पाश्चात्य दर्शन, द्वितीय संस्करण : 2007, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 143–144।*
6. *वही पुस्तक, पृष्ठ – 144।*
7. *वही पुस्तक, पृष्ठ – 144।*
8. *वही पुस्तक, पृष्ठ – 142–143।*

****